Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 11, Issue 1 | May 2023 - October 2023 | pp. 30-33

भगवद्गीता का नीतिशास्त्र : निष्काम कर्म योग—एक दार्शनिक विश्लेषण

डॉ. मीनाक्षी श्रीवास्तव

सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र
कनोडिया पी. जी. महिला महाविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भगवद्गीता वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत का एक भाग है। गीता में भगवान श्री कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद के रूप में प्रस्तुत दार्शनिक तथा नैतिक विचारों का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों तथा उपनिषदों में प्रवाहमान दार्शनिक तथा नैतिक विचारों का समन्वय तथा सार गीता में मिलता है। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता को सम्मिलित रूप से प्रस्थानत्रयी कहा गया है। समग्र रूप में ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा योग को जिस दार्शनिकता, तार्किकता तथा सहजता के साथ गीता में व्यक्त किया गया है वह अपने आप में विलक्षण है। कर्तव्य तथा कर्म के निष्काम भाव का महत्व जैसा गीता में प्रस्तुत है वैसा विश्व के किसी अन्य ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। वेदों तथा उपनिषदों के विपरीत या विरोधी प्रतीत होने वाली धाराओं का समन्वय प्रस्तुत करने के कारण गीता का नैतिक सिद्धांत सर्वांगपूर्ण है तथा दार्शनिक-नैतिक सिद्धांतों का उच्चतर दार्शनिक समन्वय गीता की मौलिकता है। प्रस्तुत शोध पात्र में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि गीता का कर्म का उपदेश एक ओर तो अध्यात्म से परिपूर्ण है और दूसरी ओर पूर्णतया व्यवहारिक भी है। गीता सम्मत निष्काम कर्म के उपदेश को बहुदा निरुद्देश्य कर्म समझने की त्रुटि विचारक करते हैं। किन्तु यह त्रुटि फलासक्ति से रहित कर्म के आदर्श को भली प्रकार से न समझने के कारण उत्पन्न होती है। प्रस्तुत आलेख में निष्काम कर्म के वास्तविक अर्थ की व्याख्या का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर—*निष्काम कर्म, नैतिकता, कर्तव्य, कर्म, अनासक्ति योग, स्थितप्रज्ञ, समत्व, निवृत्ति, प्रवृत्ति*

प्रस्तावना

भारतीय नीतिशास्त्र अति प्राचीन और विशाल प्रवाह है। यह वेदों से प्रारंभ होकर आधुनिक पथ प्रदर्शक महापुरुषों तक अनवरत चला आ रहा है। इस लंबी अवधि में नीति पर अत्यधिक विचार-विमर्श हुआ और अनेक ग्रंथों की रचना भी हुई। वेद, उपनिषद, महाभारत, गीता, रामायण आदि प्राचीन काल के नीति ग्रंथ है। भारतीय नैतिक चेतना को ऋषि-मुनियों ने अपने-अपने विचारों के माध्यम से जागृत किया है। भारतीय नीति शास्त्र में शाश्वत मूल्यों की स्थापना हुई है तथा इन शाश्वत मूल्यों से लोग प्राचीन काल में भी लाभान्वित हुए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं, और भविष्य में भी होंगे। शुक्राचार्य के अनुसार—

सर्वोपजीवक लोक स्थिति कृन्नीतिशास्त्र कम्।
धर्मार्थकाममूलं हिरियत्रा स्मृतं मोक्षप्रद् यतः।।

अर्थात जो सबकी आजीविका का साधन है, लोक में स्थित बनाए रखने वाला, धर्म-अर्थ-काम का मूल और मोक्षप्रद है वह नीति शास्त्र कहलाता है।[1] गीता का निष्काम कर्म योग हिंदू चिंतन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

भारत सहित विश्व के अनेक विद्वानों ने गीता की अलग-अलग व्याख्या की है। शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष के लिए गीता में सर्वाधिक महत्व ज्ञान को दिया गया है। रामानुज तथा निंबार्क का विचार है कि गीता में भक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। श्री

अरविंद, तिलक तथा गांधी का मत है कि गीता में मुख्य रूप से कर्म और विशेष रूप से निष्काम कर्म का उपदेश है। हिरियन्ना का गीता के विषय में मत है कि जिस अवसर पर उसके उपदेश की आवश्यकता हुई वह अति गंभीर था जब केवल देश का ही नहीं बल्कि स्वयं नैतिकता का भाग्य भी दांव पर लगा था।[2] अर्थात गीता के उपदेश का केंद्रीय बिंदु कर्म अथवा गीता की अभिव्यक्ति के अनुसार कर्म योग है।[3]

भगवद्गीता योग शास्त्र के रूप में

गीता को ब्रह्मविद्या पर आधारित योगशास्त्र माना जाता है। इस प्रकार गीता एक प्रकार का योग शास्त्र है। गीता के नीतिशास्त्र को समझने के लिए योग शब्द के अर्थ को उसी रूप में समझना आवश्यक है। जिस अर्थ में वह गीता में प्रयुक्त हुआ है। योग शब्द य्ज धातु से बना है जिसका अर्थ संयोग अथवा मिलना या जोड़ना होता है। योग को 'समत्व'[4] भी कहा गया है। समत्व का अर्थ जो कुछ भी कर्म किया जाए उसके पूर्ण होने या ना होने में अर्थात उसके कैसे भी फल के प्रति कर्ता का समभाव हो।

श्री कृष्ण गीता में योग का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि योग का अर्थ कर्मों में कौशल है। "योगः कर्मसु कौशलं"[5] कर्म में कौशल का क्या अर्थ है? गीता के अनुसार अपने कर्तव्य को पूर्ण निष्ठा तथा पूर्ण योग्यता के साथ करना ही कर्म में कौशल है। गीता में योग को ही स्थितप्रज्ञ कहा गया है। गीता के अनुसार योग से दुःख का नाश होता है तथा दुःख का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार और विहार करने वाले तथा कार्यों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले और यथा योग्य शयन तथा जगाने वाले का ही सिद्ध होता है।[6]

इस प्रकार गीता के अनुसार योग का महत्व तथा अर्थ कर्म करने में है। पतंजलि योग की क्रियाओं को इंद्रिय तथा मन को वश में करने का साधन मानते है (योगस्य चित्रवृत्ति निरोधः)। किंतु गीता में इस कर्म सन्यास की भावना को स्वीकार नहीं किया गया है। गीता का योग समाज में रहते हुए यथार्थ नैतिक द्वंद्व से उभरने तथा उचित कर्म करने का आधार है और पतंजलि योग एकांत में मोक्ष साधना है।[7]

भगवद्गीता में निष्काम कर्मयोग

गीता समाज में मनुष्य के गुण आधारित विभाजन अर्थात वर्ण व्यवस्था की समर्थक है। यहां वर्ण का निर्धारण जन्म के आधार पर नहीं बल्कि गुण व योग्यता के आधार पर स्वीकार किया गया है। गीता के अनुसार मनुष्य के कर्म के औचित्य का आधार अपने-अपने वर्ण के अनुसार कर्मों को निष्ठा पूर्वक करना है। यही वर्णधर्म का पालन है। वर्णधर्म और स्वधर्म कर्तव्य पालन ही नैतिकता का मानदंड है। मनुष्य को अपने वर्ण के अनुरूप अपने स्वभाव और सामर्थ्य, और योग्यता के अनुसार समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए। गीता में श्री कृष्ण के अनुसार कर्म का पूर्णतया त्याग संभव नहीं है। मनुष्य के लिए कर्म करना आवश्यक है , मनुष्य चाहने पर भी कर्मों का त्याग नहीं कर सकता है। किंतु अनेक कर्मों में से उपयुक्त कर्म का चुनाव अवश्य कर सकता है। अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार कर्म का चुनाव करके उसे निष्ठा पूर्वक करना ही नैतिक कर्म है। सभी परिस्थितियों में अपने कर्तव्य का पालन करने का उपदेश ही गीता का प्रमुख उपदेश है। श्री कृष्ण द्वारा अपनों के विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्ध से विचलित अर्जुन को दी गई निष्काम कर्म की शिक्षा ही भगवत गीता की प्रमुख शिक्षा है। मनुष्य को फल की इच्छा का त्याग करते हुए कर्म के परिणामों की चिंता न करते हुए, केवल अपने कर्तव्य के पालन के रूप में समस्त कर्मों को करना चाहिए। फल की चिंता किए बिना निष्काम भाव से अपने कर्मों को करना ही निष्काम कर्म योग है। गीता का प्रसिद्ध श्लोक है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मां कर्मफलहेतुभूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि।।

अर्थात कर्म करने पर तेरा अधिकार है उसके परिणाम अथवा फल पर नहीं, अतः तुझे फल की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म नहीं करना चाहिए।[8]

यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फल की इच्छा से रहित कर्म किस प्रकार संभव है? प्रत्येक कर्म का कोई प्रयोजन होता है। जिसके अभाव में कर्म नहीं हो सकता। कर्म का अभिप्राय सदैव कुछ प्राप्त करने से होता है। गीता का निष्काम भाव से कर्म करने के उपदेश का अनुसरण किस प्रकार से संभव है? इस प्रश्न के उत्तर को जानने के लिए हमें 'निवृत्ति' तथा 'प्रवृत्ति' की अवधारणाओं को समझना होगा। निवृत्ति कर्मों का पूर्ण त्याग है। वह समस्त कर्मों के पूर्ण परित्याग का मार्ग है जो कि गीता के अनुसार असंभव है। प्रवृत्ति कर्मों के लिए प्रेरणा है यह समाज में रहते हुए कर्म करते हुए जीवनयापन का मार्ग है। किंतु इस मार्ग में प्रायः बुद्धि से अधिक वासना तथा धर्म से अधिक स्वार्थ प्रभावी होता है। गीता निष्काम कर्म

योग के माध्यम से दोनों मार्गों का स्वर्णिम मध्य प्रस्तुत करती है। हिरियन्ना के शब्दों में, "गीता का उद्देश्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के आदर्शों या कर्म और ज्ञान के आदर्शों का स्वर्णिम मध्य खोजना है, या कहा जा सकता है कि दोनों की उत्कृष्टता को सहेजना है। कर्म योग एक ऐसा ही मध्य है यह कर्म का त्याग नहीं करते हुए वैराग्य का भाव बनाए रखना है।"[9] इस प्रकार गीता न तो निवृत्ति और न ही प्रवृत्ति का पूर्ण त्याग अथवा समर्थन करती है, अपितु यह दोनों ही आदर्शों का परिष्कार करते हुए उन्हें श्रेष्ठ बनाती है। अतः गीता का निष्काम कर्म योग कर्म का परित्याग नहीं है बल्कि कर्म में त्याग की भावना है अर्थात गीता के अनुसार कर्म कामयुक्त नहीं बल्कि निष्काम होना चाहिए। किंतु अब भी यह मूल प्रश्न बना रहता है कि व्यक्ति निःस्वार्थ व निष्काम भाव से कर्म कैसे कर सकता है? कर्म का प्रयोजन लक्ष्य की प्राप्ति होता है। निरूद्देश्य कर्म निरर्थक है। फिर गीता का निष्काम कर्म का उपदेश किस प्रकार मान्य हो सकता है?[10]

वस्तुतः यदि हम गीता के पूर्ण उपदेश को भलीभाँति समझे तो पाएंगे कि गीता में अंतिम लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार को ही माना गया है। ईश्वर साक्षात्कार ही 'आत्मसाक्षात्कार' है, यही मुक्ति है, यही स्थितप्रज्ञ का मार्ग है। और इस परम आदर्श की प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग निष्काम कर्म योग है। अतः निष्काम कर्म योग पूर्णतया लक्ष्य रहित नहीं है। हम निष्काम कर्म योग के विषय में कह सकते हैं कि यह सांसारिक एवं निकट फलों की इच्छा के परित्याग की भावना से कर्म करने का सिद्धांत है। कर्तव्यनिष्ठ जीवन अथवा निष्काम कर्म का एक ही लक्ष्य और उद्देश्य होना चाहिए। और यह उद्देश्य सांसारिक ना होकर अंतिम परम व आध्यात्मिक होना चाहिए| निष्काम भाव से कर्तव्य निर्वाह करते हुए परम आदर्श को प्राप्त करना ही पूर्ण योग है। गीता में निष्काम कर्म योग को ज्ञान योग, तथा भक्ति योग दोनों से ही श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि निरंतर अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान की अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है, और भक्ति की अपेक्षा कर्म फलों की आकांक्षा का त्याग श्रेष्ठ है। क्योंकि फलासिक्त के त्याग से शांति प्राप्त होती है।

गीता एवं प्रमुख पाश्चात्य नीतिशास्त्री

गीता कि यदि पाश्चात्य नैतिक विचारों के साथ तुलना करें तो देखेंगे कि दोनों के अंदर समानता पाई गई है। प्लेटो द्वारा प्रस्तुत मनुष्य के गुणों पर आधारित समाज व श्रम विभाजन की पूर्व कल्पना गीता में देखने को मिलती है। प्लेटो के दर्शन में मनुष्य के गुण के आधार पर समाज में उसके कर्तव्य का संदेश है। वह साहस संयम और विवेक के उचित समन्वय को न्याय कहता है। गीता के अनुसार मनुष्यों के चार वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वीकृत है। प्रत्येक वर्ग के मनुष्य का अपना विशेष गुण होता है और इसी के अनुरूप समाज के प्रति उसके कर्तव्य भी होते हैं।[11] कांट ने कर्तव्य पर अधिक बल दिया है। गीता में भी मनुष्य के कर्तव्य पालन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। गीता में निष्काम कर्म का उपदेश है और कांट कर्तव्य के लिए कर्तव्य का सिद्धांत का समर्थन करता है। उसके अनुसार कर्तव्य का पालन प्रत्येक स्थिति में निरपेक्ष रूप से करना चाहिए। वह भावनाओं को महत्व नहीं देता है। गीता भी धर्म और भावनाओं में से धर्म को श्रेष्ठ मानती है। श्री कृष्ण अर्जुन को भावनाओं से मुक्त करने के लिए ही क्षत्रिय धर्म का पालन करने का उपदेश देते है।[12] बेडले 'मेरा स्थान और मेरा कर्तव्य'[13] के सिद्धांत के माध्यम से व्यक्ति के स्वभाव तथा गुणों के आधार पर समाज में उसके कर्तव्य निर्धारण का विचार प्रस्तुत करता है। गीता में वर्ण तथा धर्म की अवधारणा ब्रैडले कि इस विचार को प्राचीन काल में व्यक्त कर चुकी थी।

निष्कर्ष

निष्कामता और स्थितप्रज्ञ का आदर्श गीता द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य के लिए निष्काम कर्म योग्य बनने के लिए आवश्यक है कि इंद्रियों तथा मन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया जाए। इंद्रियों को मन के द्वारा संयमित किया जा सकता है किंतु स्वयं मन अत्यंत चंचल है और वायु से भी अधिक गतिशील है, फिर भी निरंतर अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा मन को भी संयमित किया जा सकता है। समस्त वासनाओं अर्थात इंद्रियों तथा मन पर पूर्ण नियंत्रण करके अनासक्त भाव से कर्म करने वाला ही स्थितप्रज्ञ होता है। जब मनुष्य सभी कामनाओं को त्याग कर आत्म संतुष्ट एवं स्थिर बुद्धि वाला हो तथा मन दुःख में दुःखी नहीं और सुख में सुखी नहीं होता, जिसको कोई राग ,और क्रोध नहीं ऐसा मनुष्य स्थितप्रज्ञ है, और श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति लाभ-अलाभ, जय-पराजय दोनों में ही समत्व भाव रखे वही स्थितप्रज्ञ है। गीता व्यक्ति व समाज दोनों में समन्वय करके दोनों को महत्व देती है, दोनों को परस्पर आवश्यक मानती है। व्यक्ति की सर्वांग पूर्णता परम श्रेय है परंतु वह समाज के

प्रति उत्तरदायित्व के बिना संभव नहीं है। गीता का गुण पर आधारित वर्णाश्रम धर्म का सिद्धांत आधुनिक श्रम विभाजन का ही प्राचीन व शुद्ध रूप है। गीता का निष्काम कर्म का सिद्धांत मनुष्य को समाज में रहते हुए स्वयं और समाज के हित के कार्य को संन्यास भाव से करने का उपदेश है। इसके द्वारा ही मनुष्य अपने परम लक्ष्य को संसार में समाज में सक्रिय रहते हुए ही प्राप्त कर सकता है। गीता का नीतिशास्त्र कर्म व कर्म के परिणामों को आवश्यक मानने के कारण नियतिवादी है। यह कर्म वाद को भी स्वीकार करता है किंतु साथ ही व्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा भी करता है। अर्थात मनुष्य बंधनकारी कामों को करके नियत भी रह सकता है और वह चाहे तो निष्काम कर्म के द्वारा बंधन मुक्त भी हो सकता है। गीता में ईश्वर तथा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए ईश्वर प्राप्ति तथा आत्म साक्षात्कार को मनुष्य का परम शुभ माना गया है। गीता में श्री कृष्ण का उपदेश जितना आध्यात्मिक है उतना व्यवहारिक भी है। तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्तव्य निर्धारण तथा नैतिक आचरण का मार्गदर्शक है। यह मनुष्य की प्रवृत्तियों तथा उसकी अभिलाषाओं के तत्वमीमांसीय विश्लेषण पर आधारित है। निष्काम कर्म योग का अध्यात्म के अभाव में प्रयोग किए जाना संभव नहीं है। गीता की इस व्याख्या से निगमित होता है कि गीता का नीति शास्त्र हर देश और काल में समान रूप से प्रासंगिक है। संसार में मनुष्यों के उचित कर्म का दिशा निर्देश और कर्म संबंधी विरोधाभासओं का गीता निराकरण अत्यंत तार्किक एवं व्यवहारिक है।

संदर्भ सूची

1. शास्त्री, शुकदेव, शुक्र नीति सार, भारतीय नीति दर्शन, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1997, पृ.सं. 20 पर उधृत
2. हिरियन्ना, एम, आउटलाइंस ऑफ इंडियन फिलासफी, मोती लाल बनारसीदास, 1993, पृ.सं. 116
3. वही, पृष्ठ 118
4. गीता 2/48
5. गीता 2/50
6. गीता 6/17
7. पतंजलि योग सूत्र के अनुसार अंतरंग साधना यथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। साधना पाद एवं समाधि पाद पतंजलि योग सूत्र
8. गीता 2/47
9. हिरियन्ना, एम, आउटलाइंस ऑफ इंडियन फिलासफी, मोती लाल बनारसीदास, 1993, पृ.सं. 120-121
10. श्रीवास्तव, दीपक, नीतिशास्त्र, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, जयपुर, 2006, पृ.सं. 114
11. तुलना करें गीता के वर्ण आश्रम धर्म और प्लेटो के संवाद पब्लिक में राज्य और मनुष्य की अवधारणा
12. हिरियन्ना, एम, आउटलाइंस ऑफ इंडियन फिलासफी, मोती लाल बनारसीदास, 1993, पृ.सं. 120
13. ब्रैडले, एफ.एच., एथिकल स्टडीज, निबंध V, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012, पृ.सं. 145-190